सन्दर्भ–समूह व्यवहार का एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

डॉ. जयराम बैरवा

व्याख्याता समाजशास्त्र
राजकीय महाविद्यालय राजगढ़ (अलवर) राज

प्रस्तावना

अपने सन्दर्भ–समूह के अनुरूप व्यक्ति अपने व्यवहार को किस ढंग से ढ़ालता है, इस सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों ने अपने विचारों को अलग–अलग रूप में प्रस्तुत किया है। यहाँ कुछ विद्वानों के विचारों का उल्लेख निम्नवत हैं–

हाइमैन के विचार

हाइमैन ने सन्दर्भ–समूह का सर्वप्रथम प्रयोग किया और कहा कि व्यक्ति के व्यवहार प्रतिमान तथा उनक प्रस्थिति से सम्बन्धित किसी भी विवेचन में हमारे लिए इतना ही जान लेना पर्याप्त नहीं है कि वह किस समूह का सदस्य है और उस समूह में उस व्यक्ति की वास्तविक स्थिति क्या है? अपितु हमारे लिए इस बात का भी ज्ञान होना आवश्यक है कि वह व्यक्ति मनोवैज्ञानिक तौर पर किस समूह से सम्बद्ध है और अपनी बराबरी वह किस समूह के साथ करता है। यह समूह व्यक्ति की मनोवृत्तियों को ही नहीं अपितु उसकी स्थिति व आचरण के निर्धारण में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। वास्तव में सन्दर्भ–समूह व्यक्ति के लिए आदर्श समूह होता है और इसीलिए व्यक्ति 'उसी प्रकार का' होना चाहता है जैसा कि सन्दर्भ–समूह के वास्तविक सदस्यगण है। यही कारण है कि व्यक्ति उन्हीं के अनुरूप अपने को ढालने का प्रयत्न करता है व उसी रूप में अपनी स्थिति को काल्पिनक या वास्तविक तौर पर बनाये रखता है। व्यक्ति का व्यवहार, आदर्श व मूल्य वास्तव में उसके सन्दर्भ समूह का ही प्रतिरूप होता है। सन्दर्भ–समूह का वास्तविक सदस्य न होते हुए भी यह उसी समूह का होता है और उसी के अनुसार अपने को और लोगों के सम्मुख न प्रस्तुत करने का प्रयत्न करता है। इस प्रकार सन्दर्भ–समूह वह समूह है जिसके विचार, आचार, आदर्श, मूल्य, स्थिति तथा व्यवहार–प्रतिमान के साथ व्यक्ति अपना समीकरण करता है।

मुख्य शब्द – सन्दर्भ–समूह, यवहार प्रतिमान, आदर्श, मूल्य, नियमों, प्रकार्यात्मक, सकारात्मक एवं नकारात्मक संदर्भ समूह

उद्देश्य – संदर्भ समूह के द्वारा व्यक्ति दूसरे समूह के आधार मानकर किस प्राकर व्यवहार करता के बारे में चर्चा करना है।

शैरिफ और शैरिफ

सन्दर्भ–समूह व्यवहार को समझाते हुए शैरिफ एवं शैरिफ ने लिखा है कि जब एक व्यक्ति की प्रेरणायें दूसरे व्यक्तियों के समान होती हैं और वह उस समूह–संरचना जिसका कि वह एक अभिन्न अंग है, का निर्माण करने के लिए अन्य लोगों के साथ अन्तःक्रिया करता है तो उस अवस्था में वह उस समूह के मूल्यों, आदर्श–नियमों, विचारधाराओं आदि को भी अपना लेता है, क्योंकि वह समूह उसका अपना समूह होता है और उस समूह के विचार, आदर्श, मूल्य आदि उसके अपने विचार, आदर्श व मूल्य बन जाते हैं अर्थात् अपने समूह के विचार, आदर्श, मूल्य तथा व्यवहार के साथ व्यक्ति एकरूपता या समीकरण स्थापित कर लेता है। प्रत्येक व्यक्ति का अपना एक समूह होता है, जिसका वह वास्तविक सदस्य होता है और इस नाते उस समूह के साथ उसका इतना अपनापन हो जाता है कि वह उस समूह के मूल्य, आदर्श, नियम आदि को अपने ही मूल्य व आदर्श–नियम मान लेता है। उसे इस बात का गर्व होता है कि वह उस समूह का सदस्य है और वह उसका एक अभिन्न अंग है। इसलिए अपने प्रत्येक व्यवहार में व्यक्ति अपने सामने समूह के आदर्श को ही आदर्श मानकर क्रियाशील होता है क्योंकि उस समूह के आदर्श–नियम, मूल्य, व्यवहार प्रतिमान आदि उसके व्यक्तित्व की अमूल्य धरोहर बन जाते हैं। अतरू उसके अनुभव तथा व्यवहार समूह के आधार पर ही नियमित होते हैं। वह जो भी सोचता अथवा करता

है, वह सब उस समूह के आदर्श–नियमों तथा मूल्यों के आधार पर ही करता है। वह अन्य समूहों के व्यक्तियों के व्यवहार का मूल्यांकन भी अपने समूह के मापदण्डों द्वारा ही करता है। इसी दृष्टिकोण से वही समूह व्यक्ति को सन्दर्भ–समूह होता है जो उसका अपना आदर्श समूह होता है और जिसका वह स्वयं सदस्य होता है।

आधुनिक जटिल समाजों में सन्दर्भ–समूह केवल अपने उस समूह तक ही सीमित नहीं होता, जिसका कि व्यक्ति वास्तव में सदस्य होता है क्योंकि व्यक्ति का आधुनिक जीवन और व्यवहार का दायरा केवल अपने समूह तक ही सीमित नहीं है। इसलिए व्यक्ति का व्यवहार केवल उसी समूह द्वारा नियन्त्रित व निर्देशित नहीं होता जिसका कि वह वास्तविक तौर पर सदस्य है। ऐसा भी हो सकता है कि उसके अनुभव, विचार तथा व्यवहार एक ऐसे समूह द्वारा नियमित व संचालित हों, जिसका वह वास्तव में सदस्य नहीं है और उस समूह का सदस्य न होते हुए भी वह अपने व्यवहार को उस समूह के वास्तविक सदस्यों के अनुरूप ढालने का प्रयत्न करता है। उदाहरणार्थ, एक गरीब परिवार का लडक़ा अपने व्यवहार, आचरण, पोशाक तथा रूचि में एक धनी वर्ग के समरूप होना चाहता है और अपने को उसी के अनुसार दूसरों के सामने प्रस्तुत करता है। ऐसी अवस्था में उस लडक़े के लिए वह धनी वर्ग ही सन्दर्भ–समूह है। व्यक्ति उसी के विचार, आदर्श, मूल्य आदि के साथ वह अपना समीकरण करता है अथवा करने की आकांक्षा रखता है। वास्तव में इसी प्रकार के समूहों का बोध करवाने के लिए सन्दर्भ–समूह की अवधारणा का विकास हुआ है। इस अर्थ में सन्दर्भ–समूह वह समूह है जिसका कि व्यक्ति वास्तव में सदस्य नहीं भी हो सकता है, पर जो व्यक्ति के व्यवहारों तथा अनुभवों के निर्धारण में बहुत ही महत्त्वपूर्ण कारण या शक्ति होते हैं। वास्तव में आधुनिक जटिल समाज में व्यक्ति का जीवन केवल उसके अपने परिवार, पड़ोस, वर्ग, जाति तक ही सीमित न रहकर बृहत्तर समाज के अन्य अनेक ऐसे समूहों से सम्बद्ध हो जाता है जिसका कि वह वास्तव में सदस्य तो नहीं होता, पर जिनके विचार, आदर्श, मूल्य आदि से वह निरन्तर प्रभावित होता रहता है। यह समूह ही उसका सन्दर्भ–समूह है।

शैरिफ एवं शैरिफ ने इस सम्बन्ध में सदस्यता–समूह तथा सन्दर्भ–समूह के बीच पाये जाने वाले प्रकार्यात्मक अन्तर का भी उल्लेख किया है। सामान्य रूप से व्यक्ति को अपनी विविध आवश्याकताओं की पूर्ति के लिए वास्तव में एकाधिक समूहों का वास्तविक सदस्य बनना ही पड़ता है। वह पुत्र के रूप में परिवार का वास्तविक सदस्य होता है, तो विद्यार्थी के रूप में किसी स्कूल या कॉलेज का, खिलाड़ी के रूप में खेल के समूह का तो मनोरंजन के लिए किसी क्लब का। इसी प्रकार वह व्यक्ति किसी दफ्तर का, वर्ग का, पडोस का, आर्थिक संगठन का, राष्ट्र का और ऐसे ही अनेक समूहों का वास्तविक सदस्य होता है। ये सभी समूह उस व्यक्ति के सदस्यता समूह हैं और इन समूहों के द्वारा ही व्यक्ति के व्यवहारों, मनोवृत्तियों, मूल्यों, आदर्शों आदि का अर्थात् उसकी विविध प्रतिक्रियाओं का नियमन व निर्धारण होता है परन्तु व्यावहारिक स्तर पर एक व्यक्ति की सामाजिक अन्तरूक्रियाओं तथा प्रतिक्रियाों का दायरा इससे कहीं अधिक विस्तृत हो सकता है। व्यक्ति वास्तव में एक या कुछ समूह–विशेष का सदस्य हो सकता है, पर मनोवैज्ञानिक रूप में वह अपने को एक भिन्न समूह से सम्बन्धित मान सकता है, और उसी समूह के सन्दर्भ में अपनी मनोवृत्तियों तथा आकाक्षांओं को नियमित कर सकता है। उदाहरणार्थ, मध्यम वर्गया श्रमिक वर्ग का सदस्य सचेत या अचेत रूप में अपने को एक उच्च अनुभवों को विकसित करने का प्रयत्न भी कर सकता है। ऐसी अवस्था में उस व्यक्ति का समूह उसका सदस्यता समूह कहलायेगा, जबकि जिस उच्च वर्ग के साथ वह व्यक्ति मानसिक तौर पर सम्बन्धित हैं और जिसके आदर्शों, मूल्यों व व्यवहार प्रतिमानों के आधार पर वह अपने व्यवहारों तथा अनुभवों को ढालने का प्रयत्न करता है, उसका सन्दर्भ–समूह कहा जायेगा। अतरू यह आवश्यकता नहीं कि व्यक्ति जिस समूह का वास्तविक सदस्य हो, उसी के आदर्शों, मूल्यों तथा मापदण्डों के अनुरूप ही मनोवृत्तियों, व्यवहारों, अनुभवों आदि का नियमन तथा निर्धारण करें। उसके व्यवहार प्रतिमान का निर्धारण व नियमन उस विशेष समूह के मूल्यों, आदर्शों आदि के द्वारा भी हो सकता है, जिसका कि वह केवल मनोवैज्ञानिक सदस्य है। यही सन्दर्भ–समूह और उसके द्वारा निर्धारित व्यवहार का रहस्य है।

क्लाइनबर्ग के विचार

प्रो. क्लाइनबर्ग ने सन्दर्भ–समूह व्यवहार के विषय में लिखते हुए ऐसे समूहों की दो प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख किया है–

1. सन्दर्भ– समूह काल्पनिक भी हो सकते है। जब हम इस प्रकार का व्यवहार करते हैं जिन्हें कि हम सर्वोत्तम लोगों के व्यवहार के समान मानते हैं, तो हो सकता है कि उन सर्वोत्तम लोगों के व्यवहार के सम्बन्ध में हमें जो कुछ भी ज्ञान है वह बिल्कुल ही वास्तविक न होकर काल्पनिक ही हो। उदाहरणार्थ, जब निम्न आर्थिक वर्ग के लोग उच्च वर्ग के लोग बनना चाहते हैं तो उस प्रयत्न में जो कुछ भी आचरण वे करते हैं वह उच्च वर्ग के लोगों के आचरणों का व्यवहार प्रतिमान का वास्तविक नहीं, अपितु काल्पनिक रूप ही होता है। अपने नैतिक मान जैसे महत्त्वपूर्ण विषय के सम्बन्ध में अथवा चाय के प्याले को पकडने़ के तरीके जैसे साधारण विषय के सम्बन्ध में हम अपने व्यवहार को उस समूह के समरूप कर सकते हैं, तो जिसका कि वास्तविक अस्तित्व ही न हो या जो ठीक उस प्रकार का व्यवहार न करता हो जैसे कि हम कर रहे हैं।

2. प्रो. क्लाइनर्ग का कथन है कि सन्दर्भ–समूह नकारात्मक भी हो सकता है। कुछ ऐसे समूह होते हैं, जिनसे हम निकटतम सम्बन्ध रखना चाहते हैं, पर कुछ ऐसे समूह भी हो सकते हैं जिनसे हम यथा सम्भव दूर रहना ही पसन्द करते हैं। इस दूरे प्रकार के समूह से हम दूर रहना इसलिए चाहते हैं कि इस प्रकार के समूह की नीति एक विशेष प्रकार के मूल्यों की समर्थक है जो कि हमारे पसन्द के मूल्यों, नीतियों आदि के विपरीत है। इसी आधार पर हम अपने व्यवहारों, आदर्शों तथा मूल्यों को ऐसा रूप देने हेतु प्रयत्नशील होते हैं जो कि उस विपरीत समूह से बिल्कुल भिन्न हो। यह विपरीत समूह एक नकारात्मक सन्दर्भ समूह ही होगा, क्योंकि इसी समूह के सन्दर्भ में हम अपने व्यवहार को विपरीत रूप ही देना चाहेंगे और उसके लिए सचेत प्रयत्न भी करेंगे। उदाहरणार्थ, आधुनिक समय में अधिकतर अमेरिका–निवासियों के लिए सोवियत रूस एक नकारात्मक सन्दर्भ–समूह का प्रतिनिधित्व करता है। यही बात सोवियत रूस के लोगों के लिए अमेरिका के सम्बन्ध में लागू होती है।

अतः क्लाइनबर्ग के अनुसार सन्दर्भ–समूह व्यवहार में यह आवश्यक नहीं कि जिस समूह की हम नकल कर रहे हैं या जिसे हम अपना आदर्श मान रहे हैं। उसके विषय में हमें स्पष्ट और प्रत्यक्ष ज्ञान हो, नही यह जरूरी है कि उस समूह का वास्तविक अस्तित्व हो। इसी प्रकार यह भी जरूरी नहीं है कि सन्दर्भ–समूह हमारे लिए सदैव एक आदर्श समूह ही होगा, वह समूह हमारे लिए एक विपरीत–आदर्श काभी प्रतिनधित्व कर सकता है। इस पर भी वह समूह हमारा सन्दर्भ–समूह है क्योंकि इसी समूह के सन्दर्भ में हम अपने व्यवहारों, आदर्शों तथा मूल्यों को एक विपरीत दिशा की ओर मोडना़ चाहते हैं और एक विपरीत मान को बनाये रखते हैं।

न्यूकॉम्ब के विचार

प्रो. न्यूकॉम्ब का मत है कि संदर्भ–समूह का अस्तित्व वास्तव में हो सकता है और नहीं भी हो सकता है। एक व्यक्ति के लिए वह समूह सन्दर्भ–समूह हो सकता है, जिसका कि सदस्य वह कदापि न रहा हो अथवा जो कि बहुत पहले ही समाप्त हो गया हो। यह सन्दर्भ–समूह अंशतरू या पूर्णतया काल्पनिक समूह हो सकता है। इस अर्थ में सन्दर्भ–समूह के आदर्श, मूल्य, विचार आदि ही वास्तव में व्यक्ति के व्यवहार, मूल्य, आदर्श आदि को प्रभावित करते हैं।

एक व्यक्ति का सदस्यता–समूह अर्थात् वह समूह जिसका कि वह वास्तव में सदस्य है, उसका सन्दर्भ–समूह भी हो सकता है अर्थात् एक व्यक्ति का सदस्यता–समूह और संदर्भ–समूह एक भी हो सकता है। यह किसी व्यक्ति का सदस्यता–समूह किस सीमा तक उसका सन्दर्भ–समूह भी बना रहेगा, यह इस बात पर निर्भर करता है कि उस समूह की सदस्यता से उसे कितना संन्तोष या असन्तोष प्राप्त होता है। न्यूकॉम्ब ने कहा है कि एक समूह के सदस्यगण अपनी योग्यता, क्षमता, व्यक्तिगत आवश्यकताओं, व्यक्तिगत–संरचना आदि के आधार पर एक–दूसरे से भिन्न होते हैं, अर्थात् एक ही समूह के विभिन्न सदस्यों के व्यक्तिगत भिन्नतायें होती हैं इसलिए उस समूह के सदस्य के रूप में उन्हें अलग–अलग मात्रा में सन्तोष भी प्राप्त होता है। इतना ही नहीं, अपनी सदस्यता समूह से एक व्यक्ति को असन्तोष भी प्राप्त हो सकता है। असन्तोष इस कारण होता है कि एक समूह में जिसका कि व्यक्ति वास्तव में सदस्य है उसको जो सुविधायें व अवसर प्राप्त हैं व दूसरे किसी समूह या समूहों से प्राप्त होने वाली या हो सकने वाली सुविधाओं व अवसरों से कम है। आधुनिक गतिशील समाज में तो एक व्यक्ति के लिए वह बहुत ही सरल है कि वह एक समूह की सदस्यता को छोडक़र दूसरे समूह की सदस्यता को ग्रहण कर सकता है। यही कारण है कि एक समूह के सदस्य के रूप में विभिन्न व्यक्ति उस समूह से

अलग–अलग मात्रा में सन्तोष या असन्तोष का अनुभव करते हैं। जब असन्तोष की भावना अधिक हो जाती है तो कम से कम मानसिक तौर पर वह अपने को उस समूह से सम्बद्ध मान बैठता है, जिससे उसे अधिक सन्तोष प्राप्त होने की आशा है। इस प्रकार वह व्यक्ति अपने सदस्यता–समूह से मानसिक तौर पर अलग हो जाता है और उस अवस्था में वह समूह उसका संदर्भ–समूह नहीं रह जाता। उसके स्थान पर वह समूह उस व्यक्ति का सन्दर्भ–समूह बन जाता है जिसके साथ व्यक्ति अपने को वास्तविक या काल्पनिक तौर पर सम्बद्ध कर लेता है और उसी को अपना आदर्श मानकर अपने व्यवहार, मूल्य तथा आदर्शों को उसी समूह के अनुरूप ढालने का प्रयत्न करता है क्योंकि उसके मन में यह विश्वास घर कर लेता है कि ऐसा करने पर उसे अधिक सन्तोष प्राप्त होगा।

न्यूकॉम्ब का यह भी विचार है कि वास्तविक सदस्यता समूह विभिन्न रूपों में व्यक्ति के लिए सकारात्मक और नकारात्मक दोनों ही प्रकार के सन्दर्भ–समूह के रूप में कार्य कर सकता है। उदाहरणार्थ, एक हिन्दू युवक अपने परिवार की अधिकतम सामान्य मनोवृत्तियों, मूल्यों तथा आदर्शों के प्रति श्रद्धावान हो सकता है और उनको अपने आचरण या व्यवहार के निर्देशन कारक के रूप में स्वीकार भी कर सकता है । इस रूप में उसका वह परिवार उसके लिए सकरात्मक सन्दर्भ–समूह के रूप में कार्य कर सकता है। पर यह भी हो सकता है कि वही हिन्दू युवक अपने ही परिवार के कुछ आदर्शों तथा मूल्यों का समर्थन कराने से इन्कार करता हो। उदाहरणार्थ, वह अन्तर्विवाह के लिए नियम का अर्थात् अपनी जाति के अन्दर ही विवाह करता है। इस विचारधारा या आदर्श का विरोध करता है, यहाँ तक कि खुले तौर पर इस आदर्श का विरोध करके अन्तर्जातीय विवाह कर बैठता है उस अवस्थामें उसका परिवार उसके लिए नकारात्मक सन्दर्भ–समूह बन जाता है। इसी प्रकार वह समूह भी एक व्यक्ति का सकारात्मक अथवा नकारात्मक सन्दर्भ–समूह बन सकता है जिसका कि वह व्यक्ति वास्तव में सदस्य नहीं है।

मर्टन के विचार

'द अमेरिकन सोल्जर' नामक कृति नामक में रोबर्ट मर्टन तथा रोसी ने सन्दर्भ–समूह की अवधारणा को समझाने का प्रयत्न किया है। इस सम्बन्ध में उनका निष्कर्ष यह है कि एक व्यक्ति का सन्दर्भ–समूह उसका अपना अन्तः–समूह अर्थात् वह समूह हो सकता है, जिसका कि वह वास्तव में सदस्य है और वह बाह्य समूह भी हो सकता है, जिसका कि वह सदस्य नहीं। प्रथम अवस्था में में अन्तःसमूह या अपने ही समूह के सदस्य निर्देश तन्त्र का कार्य करते हैं जबकि दूसरी अवस्था में बाह्य समूह अथवा दूसरे समूह के सदस्य इस निर्देशतन्त्र के लिए चुने जाते हैं। अतः मर्टन के अनुसार सन्दर्भ–समूह का सिद्धान्त हमें यह बताता है कि व्यक्ति अन्तःसमूह अथवा बाह्य समूह को किस प्रकार अपने व्यवहार का निर्देशक मानने लगता है और उस समूह को किस प्रकार अपने व्यवहार का निर्देशक मानने लगता है और उस समूह से अपना सन्दर्भ स्थापित कर लेता है। उपरोक्त अध्ययन के आधार पर सन्दर्भ–समूह से सम्बन्धित अपने विचारों या निष्कर्षों को मर्टन ने इस प्रकार स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है–

1. अन्तः समूह या सदस्यता, सन्दर्भ–समूह के रूप में –यह देखा जाता है कि बहुधा एक व्यक्ति अपने ही समूह के उन दूसरे व्यक्तियों के उप–समूह को अपना सन्दर्भ–समूह मानने लगता है, जिनकी कि उपलब्धियाँ अधिक हैं अर्थात् जो जीवन में अधिक सफल हैं। उदाहरणार्थ, अपने ही समूह के उन सैनिकों को उसी समूह के अन्य सैनिक सन्दर्भ–समूह के रूप में स्वीकार कर सकते हैं, जिन्हें कि वीरता के पुरस्कार मिले हैं।

2. बहुल सन्दर्भ–समूह –इसके अन्तर्गत मर्टन ने दो प्रकार के सन्दर्भ–समूहों का उल्लेख किया है–

(अ) परस्पर विरोधी सन्दर्भ–समूह –कभी–कभी व्यक्ति के जीवन में एकाधिक परस्पर विरोधी सन्दर्भ–समूह आ जाते हैं और उस अवस्था में उसके सामने यह समस्या होती है कि वह उनमें से किसको चुने अथवा किस समूह को अपना आदर्श माने। ऐसी स्थिति में व्यक्ति बहुधा परिस्थिति की समानता से प्रभावित होता है और उस समूह को अपना संदर्भ–समूह नहीं मानता है जो, उसके लिये पूर्णतया अनजाना और भिन्न परिस्थिति वाला है।

(ब) निरन्तर सम्पर्क वाले संदर्भ–समूह – मर्टन का निष्कर्ष है कि जिस आयु–समूह अथवा वैवाहिक स्थिति या शैक्षिक स्तर वाले समूह के निरन्तर सम्पर्क में व्यक्ति रहता है, उसी के अनुसार उसकी मनोवृत्तियाँ ढलने लगती हैं और उसी को वह अपना संदर्भ–समूह मान लेता है। मर्टन की मान्यता

है कि जिस समूह के साथ व्यक्ति का सामाजिक सम्बन्ध जितना निरन्तर व दीर्घ होगा वही समूह उस व्यक्ति के जीवन को अधिक प्रभावित भी करेगा।

3. दूसरे विशिष्ट –मर्टन का कथन है कि प्रत्येक व्यक्ति के सामने कुछ दूसरे प्रतिष्ठित समझे जाने वाले लोगों की प्रतिभा होती है, जिन्हें कि हम दूसरे विशिष्ट कह सकते हैं। ये लोग उस व्यक्ति की निगाहों में आदर्श होते हैं और इसीलिए वह इन व्यक्तियों के साथ समरूपता स्थापित करना चाहता है अर्थात् उन दूसरे विशिष्ट व्यक्तियों जैसा बनना चाहता है। यही कारण है कि इन व्यक्तियों में वह स्वयं अपनी प्रतिमा तथा मूल्यांकन का प्रतिबिम्ब देखता है, उनके मूल्यों, आदर्शों तथा आचरण को ग्रहण करता है ताकि उन दूसरे विशिष्टों की भाँति वह स्वयं भी 'विशिष्ट' बन सके। यही कारण है कि निम्न समूह के लोग उच्च समूह को प्रभावशाली व प्रतिष्ठा वाले समूह के रूप में न केवल देखते हैं अपितु उनके मूल्यों, आदर्शों तथा आचरणों को ग्रहण करते हुए सामाजिक सीढ़ी के ऊपर चढक़र उस उच्च समूह के पास पहुँचने का प्रयत्न भी करते हैं।

4. समरूपता और असमरूपता – मर्टन का कथन है कि संदर्भ–समूह का अपना एक प्रकार्यात्मक महत्त्व यह है कि वह व्यक्ति को उसके साथ समरूपता स्थापित करने को प्रेरित करता है, जिसके फलस्वरूप उस व्यक्ति का व्यवहार, आदर्श व मूल्य उस समूह के मूल्य, आदर्श तथा आचरणों से भिन्न हो जाता है जिसका कि वास्तव में सदस्य है अर्थात् उसकी अपने समूह में समरूपता और अपने समूह से असमता स्थापित करना उसी सीमा तक वांछनीय समझा जायेगा, जहाँ तक वह सामाजिक व्यवस्था के लिए अकार्यात्मक न हो। पर यह आवश्यक नहीं है कि वह समूह के साथ जिसका कि वह सदस्य नहीं है, समरूपता स्थापित करना ही अकार्यात्मक हो। यह बहुत कुछ इस बात पर निर्भर करेगा कि उसके ऐसा करने से उसके अपने समूह के स्थापित मूल्यों को कितनी ठेस पहुँचेगी।

5. गैर–सदस्यता समूह – मर्टन का मत है कि यह जरूरी नहीं है कि कोई व्यक्ति केवल उसी समूह का सदस्य हो जिसका वह सदस्य है। वह उस समूह का भी सदस्य हो सकता है जिसका कि वह सदस्य नहीं है। मर्टन के अनुसार जिन समूहों के हम वास्तव में सदस्य नहीं होते और जिनके सदस्यों के साथ हम किसी प्रकार की अन्तरूक्रिया नहीं करते, तो भी यदि वह समूह हमारे व्यवहारों, आदर्शों तथा मूल्यों को प्रभावित करते व अपने अनुरूप ढ़ालते हैं तो वह गैर–सदस्यता समूह भी हमारे लिए सन्दर्भ–समूह होगा।

6. सकारात्मक व नकारात्मक सन्दर्भ–समूह – सन्दर्भ–समूह सकारात्मक हो सकते हैं और नकारात्मक भी अर्थात् सन्दर्भ–समूह का व्यक्ति पर प्रभाव सदा स्वस्थ ही होगा, ऐसी बात नहीं है। एक व्यक्ति अपने सन्दर्भ–समूह को भी चुन सकता है जिसका प्रभाव व्यक्ति पर नकारात्मक हो।

7. सन्दर्भ व्यक्ति या समूह का चुनाव – मर्टन के अनुसार एक व्यक्ति के द्वारा अपने सन्दर्भ के रूप में केवल समूह को नहीं अपितु व्यक्ति को भी चुना जा सकता है। इन दोनों का चुनाव कैसे किया जाता है, उसे मर्टन ने इस प्रकार समझाया हैं–

(अ) सन्दर्भ–व्यक्ति का चुनाव आदर्श भूमिका के आधार पर किया जाता है। ऐसा होता है कि एक व्यक्ति को किसी दूसरे व्यक्ति की कुछ भूमिकायें में अच्छी लगती हैं और वह उन्हें न केवल आदर्श मानने लगता है, अपितु उन भूमिकाओं को अपने जीवन में भी निखारने का प्रयत्न करता है। उदाहरणार्थ, एक विद्यार्थी को अपने किसी शिक्षक को पढ़ाने का ढंग व विद्यार्थियों के साथ व्यवहार करने का ढंग अच्छा लगता है, तो आगे चलकर शिक्षक का पेशा अपनाने पर वह विद्यार्थी उसी शिक्षक को अपना सन्दर्भ–व्यक्ति मान लेता है और शिक्षक के रूप में उनके आचरणों व भूमिकाओं को अपने जीवन में भी निखारने का प्रयत्न करता है।

(ब) सन्दर्भ–समूह का चुनाव सामाजिक जीवन में अपने को अधिक प्रतिष्ठित देखने की इच्छा से प्रेरित होता है। व्यक्ति की यह अभिलाषा होती है कि वह सामाजिक सीढ़ी से ऊपर की ओर जाये। इसके लिए एक आधार की आवश्यकता होती है, अतरू वह किसी ऐसे समूह को चुन लेता है जो कि उसकी निगाह में आदर्श व अधिक प्रतिष्ठा सम्पन्न है। इसी से यह स्पष्ट है कि सामाजिक प्रतिष्ठा पाने की इच्छा व्यक्ति को उस दूसरे समूह का चुनाव करने की प्रेरणा देती है जिसका वह सदस्य नहीं है।

8. सन्दर्भ–समूहों के चुनाव को प्रभावित करने वाले तथ्य – मर्टन ने उन तथ्यों की एक सूची प्रस्तुत की है, जो कि सन्दर्भ–समूहों के चुनाव को प्रभावित करते हैं–

1. समूहों की सदस्यता के लिए सामाजिक परिभाषाओं या नियमों का स्पष्ट अथवा अस्पष्ट होना।

2. समूह में सदस्यों की लिप्त रहने की मात्रा।
3. समूह में सदस्यता की वास्तविक अवधि ।
4. समूह में सदस्यता की अपेक्षित अवधि।
5. समूह के अस्तित्व की वास्तविक अवधि।
6. समूह के अस्तित्व की अपेक्षित अवधि।
7. किसी समूह का या उसके निर्माणक अंगों को सापेक्षित आकार।
8. समूह की मुक्त अथवा बन्द प्रकृति।
9. किसी समूह का या उसके निर्माणक अंगों का निरपेक्ष आकार ।
10. वास्तविक तथा महत्त्वपूर्ण सदस्यों का अनुपात।
11. सामाजिक विभेदीकरण की मात्रा।
12. संस्तरण की आकृति तथा ऊँचाई।
13. सामाजिक एकता के प्रकार तथा मात्रा।
14. समूह की एकता।
15. समूह के अन्तर्गत सामाजिक अन्तरूक्रिया।
16. समूह के सामाजिक सम्बन्धों की प्रकृति।
17. समूह के आदर्श नियमों के प्रति अपेक्षित समरूपता की सीमा, पथ–भ्रष्ट व्यवहारों के प्रति सहनशीलता।
18. आदर्शात्मक नियन्त्रणों की व्यवस्था।
19. समूह की भूमिकाओं के मूल्यांकन की मात्रा।
20. समूह की परिस्थिति संरचना।
21. समूह की स्वायत्तताया निर्भरता की मात्रा।
22. समूह के स्थायित्व की मात्रा।
23. समूह के संरचनात्मक संदर्भ के स्थायित्व की मात्रा
24. समूह के स्थायित्व करने के तरीके।
25. समूह की सापेक्षिक सामाजिक प्रतिष्ठा।
26. समूह की सापेक्षिक शक्ति।

9. सन्दर्भ–समूह के प्रकार्यात्मक पक्ष –सन्दर्भ–समूह, व्यक्ति को उसके साथ समरूपता स्थापित करने की प्रेरणा देता रहता है जिसके कारण व्यक्ति अपने सन्दर्भ–समूह के मूल्यों, आदर्शों तथा आचरणों को अपने जीवन में उतारने के लिए प्रयत्नशील होता है। फलस्वरूप व्यक्ति के व्यक्तित्व में न केवल अनेक नये मूल्य, आदर्श व्यवहार–प्रतिमान, विचार, प्रतिमायें आदि सम्मिलित हो जाते हैं अपितु यह सम्भावना भी रहती है कि उसकी सामाजिक स्थिति भी ऊँची उठ सकेगी। व्यक्ति का प्रत्याशित सामाजीकरण की दिशा में सन्दर्भ–समूह का प्रकार्य उल्लेखनीय है। परन्तु यह प्रत्याशित सामाजीकरण केवल मुक्त सामाजिक संरचना में प्रकार्य के रूप में होता है। बन्द सामाजिक संरचना में यह अकार्य का रूप धारण कर लेता है क्योंकि ऐसे समाज परम्परागत नियमों, आदर्शों तथा मूल्यों व व्यवहारों को त्याग कर दूसरे समूह के मूल्यों व व्यवहारों को अपनाना बुरा माना जाता है और उसका विरोध भी किया जाता है। ऐसी स्थिति में सामाजिक जीवन में तनाव व विघटन की स्थिति उत्पन्न हो सकती है। अतरू दूसरे समूह के मूल्यों व व्यवहारों को अपनाने के बाद भी व्यक्ति के लिए अपनी आकांक्षाओं को पूरा करना सम्भव नहीं होता।

इस सन्दर्भ में मर्टन ने हमारा ध्यान उस सत्य की ओर आकर्षित किया है कि जिस अनुपात में एक व्यक्ति दूसरे समूह के मूल्यों, आदर्शों व आचरणों के साथ अपनी समरूपता स्थापित करता है, उसी अनुपात में वह अपने समूह के मूल्यों तथा आचरणों से दूर होता जाता है और यदि उसके अपने समूह के अन्य सदस्य इस बात को पसन्द नहीं करते तो उस व्यक्ति व शेष समूह के बीच सामाजिक सम्बन्ध बिगडने़ लगते हैं और कभी–कभी तो खुले संघर्ष का रूप धारण कर लेता है। उस व्यवस्था में अगर व्यक्ति लौटकर अपने ही समूह के मूल्यों व आचरणों को फिर से अपनाना चाहे तो भी उसे ऐसा करने का अवसर नहीं दिया जाता। अतरू दूसरे समूह के मूल्यों व आचरणों को अपनाने की प्रक्रिया एक बार शुरू हो जाने पर वह संचित होती चली जाती है और व्यक्ति अपनी मनोवृत्तियों, मूल्यों तथा सामाजिक सम्बन्धों के क्षेत्र में अपने समूह से धीरे–धीरे अलग होता जाता है, यहाँ तक कि अन्त में वह अपने समूह से

बिल्कुल विछिन्न हो जाता है और सन्दर्भ–समूह को ही पूर्णतया स्वीकार कर लेता है। ऐसा विशेषकर उस अवस्था में होता है जबकि उसका अपना समूह पुनरू उसे अपने सदस्य के रूप में ग्रहण करने से इन्कार कर देता है।

वेब्लन के विचार

थार्सटीन वेब्लन ने अपनी 'विलासी वर्ग के सिद्धान्त' को प्रस्तुत करते हुए सन्दर्भ–समूह का अप्रत्यक्षतः उल्लेख किया है। उनके अनुसार विलासी वर्ग में भी ऊँच–नीच का एक संस्तरण होता है। जो लोग धन और वंश दोनों में ही ऊँचे होते हैं, वे अपने को उस वर्ग से ऊँचा समझते हैं जो धन या वंश के सम्बन्ध में उनसे कमजोर होते हैं। समाज में इसी प्रकार ऊँच–नीच का एक संस्तरण देखने को मिलता है। प्रत्येक वर्ग अपने से ऊपर वाले वर्ग को अपना आदर्श मानने लगता है और विलास व उपभोग के सम्बन्ध में उसी ऊपर वाले वर्ग का अनुसरण करने का भरसक प्रयत्न करता है। इस रूप में आदर्श, मूल्य, व्यवहार आदि का अनुसरण करना एक प्रकार से सम्मान का या गर्व–करने योग्य विषय माना जाता है क्योंकि इसके द्वारा व्यक्ति अपनी बराबरी ऊपर के वर्ग से कर सकता है जिससे दूसरे लोगों की दृष्टि में उसकी स्थिति स्वतरू ही ऊँची उठ जाती है। इसी कारण एक समूह या वर्ग के सदस्य अपने सन्दर्भ–समूह के आदर्शों व व्यवहार के मानों के निकट तक पहुँचने का यथा–साध्य प्रयत्न करते हैं। विशेषकर तीज–त्यौहार के अवसर पर खान–पान, वेश–भूषा आदि के विषय में उच्च वर्ग की नकल की जाती है और इसीलिये प्रायरू यह देखा जाता है कि ऐसे तीज–त्यौहार के मौके पर अनेक परिवार अपनी हैसियत से भी अधिक खर्च कर बैठते हैं, यहाँ तक कि ऐसे अवसरों पर कर्ज लेकर भी अपने खान–पान व पोशाक को उच्च वर्ग के समान लाने का प्रयत्न किया जाता है।

अपने सन्दर्भ–समूह का अनुसरण करने की छूट व्यक्ति में इस रूप में भी व्यक्त होती है कि नीचे के वर्ग या मध्य वर्ग के लोग भी, जिनकी आय अधिक नहीं होती, अपने घर के अन्दरूनी विषयों में या घर–गृहस्थी के खर्चों में बचत करके बाह्य ठाट–बाट को यथासम्भव ऊँचे स्तर पर रखने का प्रयत्न करते हैं। इसी प्रकार इस समीकरण की प्रवृत्ति की अभिव्यक्ति सदस्यों के व्यवहार में भी होती है। वे अधिक से अधिक अच्छे गहने तथा पोशाकों से अपने को सजाकर तथा उच्चस्तरीय व्यवहार प्रतिमान को अपनाकर अपने पति या पिता के परिवार की प्रतिष्ठा ओ ऊँचा बनाये रखने का एक मनोवैज्ञानिक प्रयत्न करती है। मध्यम वर्ग के परिवारों में यह भी देखा गया है कि परिवार का कर्त्ता जीवन में विलास व भोग का नामोनिशान नहीं होता। परन्तु उसकी पत्नी या बेटियाँ उसकी उस कमी को पूरा करती हैं और अपने जीवन स्तर व व्यवहार प्रतिमानों में ऐश–आराम, वेश–भूषा व आडम्बरपूर्ण चाल–ढाल का इस भाँति समावेश करती हैं कि वे उच्च वर्ग के सदस्यों के समान हो जायें।

इस सन्दर्भ में वेब्लन ने 'बिगड़े नवाबों' के एक विशेष वर्ग का भी उल्लेख किया है। इनका सन्दर्भ–समूह स्वयं उनका अपना ही वर्ग होता है, जिसका कि सदस्य अतीत में वे स्वयं उनका अपना ही वर्ग होता है, जिसका कि सदस्य अतीत में वे स्वयं नहीं अपितु उनके बाप–दादा रहे हैं। इसीलिए यह वर्ग उन लोगों का होता है, जिनके बाप–दादा रहे हैं। इसीलिए यह वर्ग उन लोगों का होता है, जिनके बाप–दादा कभी अत्यधिक प्रतिष्ठित व धनी रहे हैं और जिन्हें शरीफाना आदर्शों व ऐश–आराम करने की आदत तो अपने बाप–दादाओं से विरासत के रूप में मिल जाती है, पर उस प्रकार के ऐश–आराम की जिन्दगी बिताने के लिए आवश्यक पैतृक धन उन्हें न तो अपने बाप–दादाओं से मिला है और न ही उन्होंने स्वयं अपने प्रयत्नों द्वारा उसे प्राप्त करने की कभी न ही कोशिश की है। इस पर भी अपने पूर्वजों के वर्ग में प्रचलित ठाट–बाट, ऐश–आराम व भोग–विलास सम्बन्धी सभी आदतों व व्यवहार प्रतिमानों को ही वे आदर्श मान लेते हैं और उस उच्च स्तर को बनाये रखने के लिए किसी भी कीमत को अदा करने को तैयार रहते हैं।

References:

1. Kreci, Cruchfield & Bollachey; Individual in Society; A Text book of Social Psychology, 1962,
2. Sheriff & Sheriff ; An outline of Social Psychology,
3. New Comb; Social Psychology, 1950,
4. Milton M. Gardon; Assimilation in America; Theory and Reality, 1961,
5. Sheriff & Sheriff; Op. Cit
6. A.L. Krober: Anthropology (Indian Ed.) 1967,
7. Sheriff & Sheriff : An outline of Social Psychology, 1956,

8. Lawaniya M.M. & Jain Shashi K. : Theoretical Sociology, Research Publications Jaipur, 1986,
9. S.L. Doshi & M.S. Trivedi; Advanced Sociological Theories, Rawat Publication, Jaipur & New Delhi, 1996, Reprint, 1997.
10. Rawat H.K.; Encyclopedia of Sociology; Rawat Publications, Jaipur & New Delhi; 1998.